Vol 6, Issue 12, 2023 **Impact Factor: 5.099** DOI: https://doi.org/10.31426/ijamsr.2023.6.12.6961

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

औपनिवेशिक नीतियां और स्वदेशी प्रतिरोध: झारखंड में आदिवासी आजीविका पर ब्रिटिश वन नियमों के प्रभाव का विश्लेषण

संध्या लाकड़ा

रिसर्च स्कॉलर, वाईबीएन यूनिवर्सिटी, रांची।

डॉ सुस्मिता महापात्रा

एसोसिएट प्रोफेसर एवं एचओडी,
इतिहास विभाग, वाईबीएन विश्वविद्यालय, रांची

सारांश (Abstract)

यह शोध झारखंड के आदिवासी समुदायों पर ब्रिटिश औपनिवेशिक वन नीतियों के प्रभावों का विश्लेषण करता है। पारंपरिक रूप से आदिवासी समाज जंगलों पर निर्भर था, जो उनकी आजीविका, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का आधार थे। ब्रिटिश वन नियमों, विशेषकर 1865 और 1878 के भारतीय वन अधिनियमों ने आदिवासियों के वन अधिकारों को सीमित कर दिया, जिससे उनकी आजीविका और सामाजिक संरचना पर गहरा असर पड़ा। वन संसाधनों तक पहुंच न होने के कारण आदिवासियों को गरीबी, विस्थापन, और सामाजिक विघटन का सामना करना पड़ा। इस शोध में आदिवासी समाज के प्रतिरोध और संघर्षों का भी विश्लेषण किया गया है, जिसमें बिरसा मुंडा जैसे नेतृत्वकर्ताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

मुख्य बिंदु: औपनिवेशिक वन नीतियाँ (Colonial Forest Policies), आदिवासी आजीविका (Tribal Livelihood), झारखंड (Jharkhand), प्रतिरोध आंदोलन (Resistance Movement)

1. परिचय

झारखंड के आदिवासी समुदायों का पारंपरिक जीवन जंगलों और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित रहा है। उनके जीवन का आधार जंगलों से प्राप्त होने वाली उपज, जड़ी-बूटियों, शिकार, और खेती-बाड़ी रहा है। आदिवासी समाज ने सदियों से जंगलों के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखा, जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का सतत् उपयोग उनकी आजीविका और सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा था। लेकिन ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ ही, इस पारंपरिक जीवन में बदलाव आने लगा। ब्रिटिश शासन का प्रमुख उद्देश्य भारत के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और उनका व्यावसायिक लाभ उठाना था। (कैन एट अल., 2017) इसके तहत, ब्रिटिश सरकार ने 19वीं सदी के मध्य में वन संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए वन कानूनों और नीतियों को लागू किया। 1865 का भारतीय वन अधिनियम और इसके बाद 1878 में संशोधित वन अधिनियम जैसे कानूनों ने जंगलों पर सरकारी नियंत्रण स्थापित किया और आदिवासियों के वन संसाधनों पर

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

पारंपरिक अधिकारों को गंभीर रूप से सीमित कर दिया। इन नीतियों के तहत आदिवासियों के लिए जंगलों में प्रवेश, लकड़ी और अन्य वन उत्पादों का संग्रहण निषिद्ध हो गया। औपनिवेशिक वन नियमों ने आदिवासियों के जीवन पर विनाशकारी प्रभाव डाला। जंगलों पर उनकी निर्भरता के बावजूद, ब्रिटिश नीतियों ने उन्हें उनके ही प्राकृतिक संसाधनों से वंचित कर दिया। इससे आदिवासियों की आजीविका, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक परंपराएं बुरी तरह प्रभावित हुईं। जंगलों से वंचित होने के कारण आदिवासियों के लिए भुखमरी, विस्थापन और गरीबी जैसी समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। (सतपथी, 2015) उनके लिए जंगलों से मिलने वाले खाद्य स्रोत, औषधीय पौधे और अन्य प्राकृतिक उपज तक पहुँचना कठिन हो गया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति भी कमजोर हो गई। इन नीतियों के प्रति आदिवासी समाज ने प्रतिरोध का रास्ता अपनाया। बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडा विद्रोह (उलगुलान) और अन्य आदिवासी आंदोलनों ने ब्रिटिश सरकार के वन नियमों और अन्य शोषणकारी नीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। इन आंदोलनों का उद्देश्य सिर्फ वन अधिकारों की बहाली नहीं था, बल्कि उनके सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन को बचाना भी था। प्रतिरोध के ये प्रयास आदिवासी समाज के संघर्षशील और आत्मनिर्भर स्वभाव को प्रदर्शित करते हैं। ब्रिटिश वन नियमों और नीतियों के परिणामस्वरूप, झारखंड के आदिवासी समुदायों ने अपने पारंपरिक जीवन और अधिकारों की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया। यह संघर्ष न केवल औपनिवेशिक दमन के खिलाफ था, बल्कि उनके अस्तित्व, संस्कृति और स्वतंत्रता की रक्षा का भी प्रतीक था, जिसका प्रभाव आज भी झारखंड के आदिवासी समाज में देखा जा सकता है।

1.1 औपनिवेशिक वन नीतियों का उद्भव

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत भारत में वन संसाधनों का प्रबंधन और दोहन एक प्रमुख उद्देश्य बन गया था। 19वीं सदी के मध्य में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जंगलों का व्यावसायिक रूप से लाभ उठाने के लिए नई वन नीतियों का निर्माण किया। इसका मुख्य कारण था ब्रिटेन में बढ़ती औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए लकड़ी और अन्य वन उत्पादों की आपूर्ति को सुनिश्चित करना, साथ ही रेलवे के विस्तार के लिए लकड़ी की बढ़ती मांग को पूरा करना (प्रकाश, 2015) ।

1.2 प्रारंभिक संदर्भ

ब्रिटिश शासन के शुरुआती दौर में भारतीय जंगलों को लेकर कोई औपचारिक नीति नहीं थी। उस समय जंगलों का उपयोग स्थानीय समुदायों द्वारा कृषि, पशुपालन, और वन उपज के लिए स्वतंत्र रूप से किया जाता था। लेकिन जैसे-जैसे ब्रिटिश सत्ता मजबूत हुई और औद्योगिककरण के साथ संसाधनों की मांग बढ़ी, ब्रिटिश सरकार ने इन जंगलों पर नियंत्रण करने की योजना बनाई।

1.3 1865 का भारतीय वन अधिनियम

1865 में ब्रिटिश सरकार ने पहला भारतीय वन अधिनियम लागू किया, जिसने जंगलों को सरकार के अधिकार क्षेत्र में लाने की प्रक्रिया शुरू की। इस अधिनियम का उद्देश्य था सरकार द्वारा कुछ चुनिंदा जंगलों को "राजकीय जंगलों" के रूप में नामित करना और उनकी देखरेख करना। इसके तहत जंगलों के वाणिज्यिक

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

उपयोग और नियंत्रण की व्यवस्था की गई, जिससे स्थानीय आदिवासी और ग्रामीण समुदायों के परंपरागत अधिकार सीमित हो गए (पटनायक, 2007) ।

1.4 1878 का भारतीय वन अधिनियम

1878 में संशोधित भारतीय वन अधिनियम को लागू किया गया, जिसने पहले से कहीं अधिक कठोर वन नियम स्थापित किए। इस अधिनियम के तहत जंगलों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया: आरक्षित वन, संरक्षित वन, और ग्राम वन। आरक्षित वनों में आदिवासियों और स्थानीय लोगों के सभी प्रकार के अधिकार समाप्त कर दिए गए। सरकार ने इन वनों के सभी उत्पादों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया, और इन जंगलों में प्रवेश भी प्रतिबंधित कर दिया गया। संरक्षित और ग्राम वनों में भी नियमों का पालन किया जाना आवश्यक था, जिससे पारंपरिक आदिवासी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा (पारिख, 2013)।

1.5 वाणिज्यिक दोहन और वन प्रबंधन

औपनिवेशिक वन नीतियों का प्रमुख उद्देश्य वाणिज्यिक दोहन था। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जंगलों से लकड़ी, रेजिन, और अन्य वन उत्पादों का बड़े पैमाने पर निर्यात करना शुरू किया। रेलवे के विस्तार, जहाज निर्माण, और कोयला खदानों के लिए भी लकड़ी की भारी मांग थी, जिसे पूरा करने के लिए भारतीय जंगलों का बड़े पैमाने पर कटान किया गया। औपनिवेशिक वन नीतियों का उद्भव भारतीय आदिवासियों के पारंपरिक जीवन और वन अधिकारों को हाशिए पर धकेलने की शुरुआत थी, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी समाज को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक नुकसान झेलना पड़ा (टोरेस-रोजो, 2016) ।

2. साहित्य की समीक्षा

मलिक, सृष्टि और रवि शरण दीक्षित (2020) ने कहा कि उनके लेख में जंगलों, लोगों और राज्य के बीच संबंधों की खोज की गई थी, खासकर उत्तराखंड के संबंध में, जिसने उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में औपनिवेशिक सत्ता और वन संसाधनों पर वर्चस्व का खामियाजा भुगता था। उन्होंने अन्य पहलुओं के अलावा औपनिवेशिक वाणिज्यिक वानिकी, वैज्ञानिक प्रथाओं और स्थानीय लोगों के पारंपरिक प्रथागत अधिकारों में हस्तक्षेप का पता लगाया। उन्होंने उल्लेख किया कि रामचंद्र गुहा, माधव गाडगिल और शेखर पाठक ने उत्तराखंड के पर्यावरण इतिहास पर विस्तृत और दिलचस्प प्रवचन लिखे हैं, जिसका अंग्रेजों की वैज्ञानिक प्रथाओं के खिलाफ प्रतिरोध का एक लंबा इतिहास रहा है। एक सदी से भी अधिक समय से, विकास ने प्रमुख पारिस्थितिक परिवर्तन लाए हैं, जिसमें ओक के बागानों से चीड़-पाइन में परिवर्तन शामिल है, जो पर्यावरणीय छोर पर बारिश, मिट्टी के कटाव और भूस्खलन को प्रभावित करता है। उन्होंने उल्लेख किया कि इस मुद्दे से संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दिए जा सकते हैं, जैसे कि पर्यावरण नियंत्रण के बदलते पैटर्न के प्रति स्वदेशी प्रतिक्रिया, उस अवधि के दौरान औपनिवेशिक सत्ता का प्रतिरोध कैसे हुआ और कैसे वन नीति और अधिनियम ने वन क्षेत्रों पर नियंत्रण को जन्म दिया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इस स्थिति ने विशेष रूप से महिलाओं को बुरी तरह प्रभावित किया है, जिन्होंने इसका खामियाजा भुगता है और 1970 के दशक के चिपको आंदोलन के रूप में अंग्रेजों की वर्चस्वकारी वन नीतियों के खिलाफ प्रतिरोध जारी रखने के लिए सबसे आगे आई हैं।

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

मापेड्ज़ा, एवरिस्टो (2007) ने संकेत दिया कि माफ़ुंगौत्सी फ़ॉरेस्ट रिजर्व के मामले का उपयोग करते हुए, उनके पेपर ने ज़िम्बाब्वे में सामुदायिक और आरक्षित वन इंटरफ़ेस पर नीति और व्यवहार में निरंतरता और परिवर्तनों पर चर्चा की थी। उन्होंने कहा कि ज़िम्बाब्वे में औपनिवेशिक वानिकी नीति को अक्सर दमनकारी करार दिया गया था, क्योंकि सामुदायिक क्षेत्रों में नागरिकों को इसके निर्माण और कार्यान्वयन में प्रभावी रूप से भाग लेने की अनुमति नहीं थी। 1980 में स्वतंत्रता के बाद, यह माना जाता था कि वानिकी क्षेत्र के भीतर अधिक भागीदारी का युग शुरू होगा। हालाँकि, उन्होंने बताया कि स्थानीय समुदायों के लिए वानिकी नीतियों और प्रबंधन में अधिक इनपुट होने की उम्मीद काफी हद तक अधूरी रही है। वनों के प्रबंधन के लिए जिम्मेदार राज्य संस्थान स्वतंत्रता-पूर्व बयानबाजी के बावजूद वानिकी संसाधनों के प्रबंधन में स्थानीय समुदायों की भागीदारी के प्रति काफी हद तक असहानुभूतिपूर्ण रहे हैं। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि स्थानीय किसानों को निर्णय लेने में शामिल करके उन्हें नागरिक बनाने के सह-प्रबंधन के प्रयासों के साथ-साथ, औपनिवेशिक नीति की निरंतरता ने संसाधनों का उपयोग करने वाले स्थानीय किसानों को पेड़ों और जंगलों को नष्ट करने वाले अपराधियों के रूप में माना है। उनके शोधपत्र ने जांच की कि जिम्बाब्वे में वानिकी के मौलिक नीतिगत परिप्रेक्ष्य में अभी भी स्थानीय किसानों को जंगलों के असंतुलित शोषक के रूप में माना जाता है। उन्होंने देखा कि स्थानीय संसाधन उपयोगकर्ता विज्ञान पर आधारित दमनकारी वानिकी नीतियों और प्रथाओं के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं रहे हैं, बल्कि 1950 के दशक से ही उनका सक्रिय रूप से विरोध करते रहे हैं।

बोस, पुराबी, बास आर्ट्स और हान वैन डिज्क (2012) ने तर्क दिया कि उनके शोधपत्र ने अनुसूचित जनजातियों को वर्गीकृत करने और आदिवासी क्षेत्रों में वनों को उचित और वैध बनाने के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन और स्वतंत्र भारत दोनों के ऐतिहासिक प्रक्षेपवक्र का विश्लेषण किया। उन्होंने फौकॉल्ट की शासन व्यवस्था की धारणा पर निर्माण करते हुए तर्क दिया कि अनुसूचित जनजातियों के विषय-निर्माण का इतिहास और वन सीमांकन का संबंधित इतिहास भारत में विकेन्द्रीकृत वन प्रबंधन की वर्तमान राजनीति को समझने के लिए अपरिहार्य रहा है। उन्होंने 'वन शासन' के तीन आयामों पर चर्चा की- वर्गीकरण का इतिहास, सामाजिक पहचान की राजनीति और वन शासन की तकनीकें- यह दिखाने के लिए कि वन स्वामित्व अधिकारों को राजनीतिक बनाने के हाल के प्रयासों ने प्राधिकरण, समावेशन और बहिष्कार के नए रूपों के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों पर राजनीतिक नियंत्रण को कैसे मजबूत किया है। हालांकि, उन्होंने उल्लेख किया कि वन भूमि और संसाधनों पर अपने व्यक्तिगत और सामुदायिक अधिकारों का दावा करने के लिए, अनुसूचित जनजातियों ने अपनी 'नई' जातीय पहचान को आंतरिक रूप से अपना लिया है, जिससे वर्तमान वन शासन व्यवस्था के भीतर प्रतिकारी शक्ति और पैंतरेबाज़ी करने की गुंजाइश पैदा हो गई है। उन्होंने पश्चिमी भारत के अर्ध-शुष्क क्षेत्र में मुख्य रूप से वन-निर्भर अनुसूचित जनजाति भील के एक केस स्टडी के साथ इसका समर्थन किया।

कुमार (2012) ने उल्लेख किया कि, पिछले दो दशकों में, दक्षिण एशिया में वानिकी क्षेत्र में मजबूत सुधार हुए हैं, जिसके बारे में कहा गया था कि यह राज्य-केंद्रित से लोगों-केंद्रित वन प्रबंधन में परिवर्तन की शुरुआत कर रहा है। इस बदलाव को भारत में शासन प्रक्रियाओं में उपनिवेशवाद के उन्मूलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना गया। औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक दक्षिण भारत में वन नीतियों की जांच करने पर, लेख में पाया गया कि उत्तर-औपनिवेशिक भारत में सामुदायिक वन प्रबंधन काफी हद तक वन संसाधन प्रबंधन

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

नीतियों के औपनिवेशिक ढांचे में निहित रहा। व्यवहार में, इसका मतलब यह था कि वनों के दोहन ने उस समय वन-निर्भर समुदायों की आवश्यकताओं पर कुछ विचार किया, लेकिन यह एक ऐसे राज्य के नियंत्रण में हुआ जो अपने कई सबसे कमजोर नागरिकों के सबसे बुनियादी अधिकारों की रक्षा करने में विफल रहा। इस प्रकार लेख ने आलोचनात्मक रूप से तर्क दिया कि भारत में कथित रूप से लोगों-केंद्रित सामुदायिक वन प्रबंधन स्थानीय विकास आवश्यकताओं के प्रति पर्याप्त संवेदनशील नहीं था, न ही वास्तव में कई वन-निर्भर लोगों की बुनियादी जरूरतों की पर्याप्त सुरक्षा करता था।

ग्रोव (2017) ने संकेत दिया कि स्वदेशी ग्रामीण समाजों पर औपनिवेशिक प्रभाव के अधिकांश ऐतिहासिक विश्लेषणों में, हाल ही तक, कृषि योग्य प्रणालियों के साथ लगभग अनन्य रूप से व्यस्तता रही है। उन्होंने कहा कि गैर-कृषि योग्य परिदृश्य की चौंकाने वाली उपेक्षा दुर्भाग्यपूर्ण रही है, क्योंकि कई समाजों में, सीमांत, गैर-कृषि योग्य भूमि और जंगलों का दोहन करने की क्षमता अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण रही है, और ऐसा करने की क्षमता लगातार अधिक सीमित होती गई है क्योंकि संसाधन वस्तु उत्पादन के लिए समर्पित हो गए हैं। इस संबंध में औपनिवेशिक शासन विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा है। यह देखा गया कि उपनिवेशवाद और उसके उत्तराधिकारी राज्यों ने लोगों, जंगलों और अन्य गैर-कृषि योग्य भूमि के बीच के संबंधों की प्रकृति में परिवर्तन लाया है। इसमें, संक्षेप में, स्थानीय रूप से विकसित मानव-भूमि संबंधों से सीधे निजी संपत्ति की स्थिति या सीधे राज्य नियंत्रण की ओर संक्रमण शामिल था। इन परिवर्तनों में अक्सर वस्तु उत्पादन के लिए परिदृश्य का बढ़ता दोहन और प्रथागत नियंत्रण और सामान्य संपत्ति अधिकारों या परंपराओं का क्षरण शामिल होता है। ग्रोव ने बताया कि पारिस्थितिक संक्रमण मुख्यतः, हालांकि किसी भी तरह से अनन्य नहीं था, दुनिया भर में यूरोपीय पूंजीवादी व्यवस्था के प्रसार के साथ-साथ औपनिवेशिक संदर्भ के बाहर और भीतर पश्चिमी आर्थिक प्रक्रिया के प्रवेश के साथ हुआ था। उन्होंने जोर दिया कि अध्याय मुख्य रूप से पश्चिमी पारिस्थितिक प्रणालियों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और औपनिवेशिक परिधि में उनके विस्तार के परिणामों से संबंधित था, विशेष रूप से वन संरक्षण के रूपों में। हालांकि, उन्होंने पारिस्थितिक नियंत्रण के नए रूपों के विकास को समझने के महत्व को भी रेखांकित किया, विशेष रूप से राज्य स्तर पर, व्यापारिक समुद्री राज्यों के विकास में बहुत पहले के चरणों में, इन राज्यों की बढ़ती संसाधन मांगों को यूरोप से निर्यात किए जाने से पहले। जबकि मुख्य जोर औपनिवेशिक वन और मिट्टी नियंत्रण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर था, पारिस्थितिक नियंत्रण के अन्य प्रमुख रूपों के प्रति सामाजिक प्रतिक्रिया पर भी ध्यान दिया गया।

3. पारंपरिक आदिवासी आजीविका और जंगलों पर निर्भरता

झारखंड के आदिवासी समुदायों की पारंपरिक आजीविका मुख्य रूप से जंगलों और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित रही है। आदिवासियों के जीवन में जंगल न केवल एक आर्थिक संसाधन थे, बल्कि उनके सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का भी अभिन्न हिस्सा थे। पीढ़ियों से आदिवासी समुदाय जंगलों के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए हुए थे, जहाँ वे प्रकृति से प्राप्त संसाधनों का सतत् उपयोग करते हुए अपनी आजीविका चलाते थे।

3.1 आर्थिक निर्भरता: आजीविका के साधन

आदिवासी समुदाय अपनी आजीविका के लिए सीधे तौर पर जंगलों पर निर्भर रहते थे। उनके पारंपरिक आर्थिक साधन थे:

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

- **शिकार और मछली पकड़ना**: आदिवासी जंगलों में शिकार करके और नदियों-झरनों में मछली पकड़कर अपने भोजन की व्यवस्था करते थे। यह उनके भोजन का प्रमुख स्रोत था।
- **कृषि**: जंगलों के आसपास की भूमि पर आदिवासी समूहों द्वारा झूम खेती (स्थानांतरित खेती) की जाती थी। इसके तहत जंगल की भूमि को कुछ समय के लिए साफ कर उसमें खेती की जाती थी, फिर भूमि को कुछ समय के लिए छोड़ दिया जाता था ताकि मिट्टी की उर्वरता फिर से लौट सके।
- **वन उपज का संग्रहण**: आदिवासी समुदाय जंगलों से फल, शहद, कंद-मूल, जड़ी-बूटियाँ, लकड़ी, रेजिन, और अन्य वन उत्पादों को इकट्ठा करते थे, जो उनकी दैनिक जरूरतों और व्यापार के लिए इस्तेमाल होते थे। वे इन्हें स्थानीय बाजारों में बेचते थे या स्वयं के उपयोग के लिए रखते थे।
- **घरेलू उपयोग के लिए लकड़ी**: आदिवासी लोग जंगलों से ईंधन के लिए लकड़ी, घर बनाने के लिए बाँस और छप्पर के लिए पत्तियों का उपयोग करते थे।

3.2 सांस्कृतिक और धार्मिक निर्भरता

आदिवासियों का जंगलों के साथ केवल आर्थिक संबंध ही नहीं था, बल्कि यह उनके धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का भी केंद्र था। कई आदिवासी समुदायों की मान्यताओं में जंगलों को पवित्र स्थान माना जाता था। वे विभिन्न पेड़ों, पहाड़ों, और नदियों को देवी-देवताओं का निवास मानते थे और विशेष अवसरों पर जंगलों में पूजा करते थे। उनके धार्मिक त्योहार, अनुष्ठान और विवाह जैसे आयोजन भी जंगलों से जुड़े होते थे।

3.3 पर्यावरणीय और सामाजिक संतुलन

आदिवासी समुदायों ने जंगलों के साथ ऐसा संतुलन स्थापित किया था, जो प्रकृति की रक्षा और उनके जीवन की निरंतरता दोनों को बनाए रखता था। आदिवासी समाज प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग करता था और जंगल की उर्वरता और संरक्षण के लिए जिम्मेदार होता था। इस प्रकार जंगल और आदिवासी समाज के बीच एक सतत् और टिकाऊ संबंध बना रहता था।

3.4 औपनिवेशिक हस्तक्षेप से पहले स्थिति

औपनिवेशिक हस्तक्षेप से पहले, झारखंड के आदिवासी समुदायों के जंगलों पर स्वाभाविक और स्वतंत्र अधिकार थे। वे इन संसाधनों का बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के उपयोग करते थे, जिससे उनकी आजीविका सुरक्षित रहती थी और वे समृद्ध सांस्कृतिक जीवन जीते थे। जंगलों ने उन्हें न केवल भौतिक रूप से बल्कि भावनात्मक और सांस्कृतिक रूप से भी समर्थन दिया।

3.5 वन नीतियों का प्रभाव

औपनिवेशिक नीतियों ने आदिवासी समुदायों के इन पारंपरिक अधिकारों को छीन लिया। जंगलों पर सरकार का नियंत्रण स्थापित हो गया, और आदिवासियों के लिए वन उपज का संग्रहण, शिकार, और खेती प्रतिबंधित कर दिया गया, जिससे उनकी आजीविका पर गंभीर असर पड़ा। आदिवासी समाज का पारंपरिक जीवन जंगलों से गहराई से जुड़ा हुआ था, और उनका आर्थिक, सांस्कृतिक, और धार्मिक अस्तित्व इन संसाधनों पर निर्भर था। औपनिवेशिक शासन के आगमन ने इस संतुलित जीवन पर सीधा आघात किया, जिससे आदिवासी समुदायों को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा।

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

4. वन नियमों के परिणामस्वरूप आदिवासी जीवन में बदलाव

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान लागू किए गए वन नियमों का झारखंड के आदिवासी समुदायों पर गहरा और दूरगामी प्रभाव पड़ा। पारंपरिक रूप से जंगलों पर निर्भर आदिवासी समुदायों के जीवन, आजीविका, सामाजिक संरचना, और सांस्कृतिक परंपराओं में बड़े पैमाने पर बदलाव आया। वन संसाधनों पर उनके अधिकारों को सीमित या समाप्त कर दिया गया, जिससे उनका पारंपरिक जीवन संघर्षमय हो गया।

4.1 वन अधिकारों का हनन

ब्रिटिश वन नीतियों के तहत 1865 और 1878 के भारतीय वन अधिनियमों ने आदिवासियों के पारंपरिक अधिकारों को पूरी तरह खत्म कर दिया। आरक्षित वनों में प्रवेश, लकड़ी का संग्रहण, और वन उपज के उपयोग पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया गया। इन नीतियों के कारण आदिवासी समुदाय जंगलों के संसाधनों का स्वतंत्र रूप से उपयोग नहीं कर पाए, जो उनके जीवन का आधार थे। इससे उनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया, क्योंकि उनके पास आजीविका के वैकल्पिक साधन नहीं थे।

4.2 आर्थिक कठिनाइयाँ

वन नियमों के परिणामस्वरूप आदिवासियों की आर्थिक स्थिति तेजी से बिगड़ने लगी। उन्हें शिकार, मछली पकड़ने, वन उपज एकत्र करने और झूम खेती करने से वंचित कर दिया गया। सरकार द्वारा वन संसाधनों का वाणिज्यिक दोहन किया जाने लगा, जबकि आदिवासी समुदायों को जंगलों से निकाला गया या उनके अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए गए। इससे उनकी आजीविका पर सीधा असर पड़ा, और कई आदिवासी परिवार गरीबी और भुखमरी का सामना करने लगे। आदिवासी समुदायों के लिए जंगल से मिलने वाले खाद्य पदार्थों, औषधीय पौधों, और अन्य उत्पादों तक पहुँचना कठिन हो गया। इसके कारण उन्हें कृषि मजदूर, खनन मजदूर, या छोटे-मोटे रोजगार की ओर धकेला गया, जो उनकी पारंपरिक आजीविका से पूरी तरह भिन्न था। उनका पारंपरिक आत्मनिर्भर जीवन समाप्त होने लगा, और वे आर्थिक रूप से कमजोर होते गए।

4.3 विस्थापन और सामाजिक ताना-बाना

ब्रिटिश शासन के दौरान वन क्षेत्रों पर सरकारी कब्जा बढ़ा, और आदिवासी समुदायों को जबरन जंगलों से बाहर किया गया। इससे उनका सामाजिक ताना-बाना बिखर गया। कई आदिवासी परिवार विस्थापित हो गए, जिससे उनकी सामुदायिक संरचना और जीवन शैली में बड़ा बदलाव आया। उनके पास सुरक्षित आवास और रोजगार की कमी होने लगी, और वे शहरी या औद्योगिक इलाकों में मजदूरी के लिए पलायन करने पर मजबूर हुए।

4.4 सांस्कृतिक और धार्मिक संकट

जंगल आदिवासियों के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का केंद्र थे। जंगलों पर नियंत्रण के साथ उनके धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी असर पड़ा। आदिवासी त्योहार, पूजा, और पारंपरिक अनुष्ठान जंगलों से जुड़े होते थे, जिन्हें अब करने में कठिनाइयाँ होने लगीं। इससे उनकी सांस्कृतिक पहचान पर भी आघात हुआ। जंगलों से दूरी ने उनके धार्मिक विश्वासों और परंपराओं को कमजोर कर दिया, जो उनकी सामुदायिक भावना और एकता का स्रोत थे।

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

4.5 आपराधिक गतिविधियों का आरोप

जंगलों में प्रवेश और वन उपज के संग्रहण पर लगे प्रतिबंधों के चलते, जब आदिवासी लोग अपनी पारंपरिक आजीविका के लिए इन गतिविधियों को जारी रखने का प्रयास करते, तो उन्हें कानून का उल्लंघन करने वाला या अपराधी माना जाता। उन पर जंगलों में अवैध रूप से प्रवेश करने, शिकार करने या लकड़ी काटने के आरोप लगाकर सजा दी जाने लगी। कई आदिवासी नेताओं और समुदायों पर आपराधिक मुकदमे चलाए गए, जिससे उनकी स्थिति और भी बदतर हो गई।

4.6 शोषण और दमन

वन नियमों के कारण आदिवासी समुदायों का शोषण और दमन बढ़ गया। ब्रिटिश सरकार ने जंगलों की निगरानी के लिए पुलिस और वन अधिकारियों को तैनात किया, जो आदिवासियों के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे। आदिवासी समुदायों को अपने ही पारंपरिक क्षेत्रों में विदेशी शासन द्वारा नियंत्रित होने की वजह से उत्पीड़न और असमानता का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश वन नीतियों के लागू होने से आदिवासी समुदायों का जीवन पूरी तरह बदल गया। उनकी पारंपरिक आजीविका खत्म हो गई, उन्हें विस्थापन, गरीबी, और सामाजिक विघटन का सामना करना पड़ा, और उनकी सांस्कृतिक धरोहर को भी नुकसान पहुँचा। आदिवासी समुदायों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया, लेकिन वन नियमों ने उनके अस्तित्व और स्वतंत्रता को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

5. निष्कर्ष

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान लागू की गई वन नीतियों का झारखंड के आदिवासी समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव अत्यधिक गहरा और बहुआयामी रहा। वन नियमों ने न केवल आदिवासी समाज की पारंपरिक आजीविका को बाधित किया, बल्कि उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक, और आर्थिक स्थिति को भी बुरी तरह प्रभावित किया। इस प्रभाव के चलते आदिवासी समाज में विस्थापन, शोषण, और हाशिए पर जाने की प्रक्रिया तीव्र हो गई, जिसके परिणामस्वरूप उनकी संघर्षशीलता और आत्मनिर्भरता भी प्रभावित हुई।

5.1 आर्थिक और सामाजिक बदलाव

वन अधिकारों से वंचित किए जाने के बाद आदिवासी समाज की आर्थिक संरचना पूरी तरह बदल गई। पारंपरिक रूप से आत्मनिर्भर आदिवासी समुदायों को अपनी आजीविका के लिए जंगलों पर निर्भरता खत्म करनी पड़ी, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई। कृषि मजदूरी, खनन, और छोटे-मोटे रोजगारों पर निर्भरता बढ़ी, जिससे उनकी आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई। जंगलों पर सरकारी नियंत्रण के कारण आदिवासियों को जंगल से मिलने वाली खाद्य सामग्री, औषधीय पौधों, और अन्य उपज तक पहुंच नहीं रही, जिससे उन्हें अपनी जरूरतों के लिए बाहरी स्रोतों पर निर्भर होना पड़ा। इसके साथ ही आदिवासी समाज का सामाजिक ताना-बाना भी बिखरने लगा। वन नियमों के कारण जंगलों से विस्थापन के चलते आदिवासी समुदायों का पारंपरिक रहन-सहन और उनके सामाजिक संबंध टूटने लगे। सामूहिकता और समुदायिकता जो आदिवासी समाज की पहचान थी, वह कमजोर हो गई। उनका सामाजिक ढांचा, जिसमें समुदायों के बीच परस्पर सहयोग और समर्थन की भावना थी, धीरे-धीरे विखंडित हो गया।

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

5.2 सांस्कृतिक और धार्मिक क्षति

जंगल आदिवासी समाज की सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर का केंद्र रहे हैं। जंगलों से जुड़ी उनकी धार्मिक आस्थाएँ, देवी-देवताओं की पूजा, और पारंपरिक अनुष्ठानों का महत्व उनके जीवन में बहुत गहरा था। वन नियमों के चलते आदिवासियों की जंगलों तक पहुँच खत्म हो जाने से उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं को गंभीर क्षति पहुँची। उनके धार्मिक आयोजन और पर्व, जो जंगलों के साथ जुड़े होते थे, धीरे-धीरे कम होते गए और इसका प्रभाव उनके सांस्कृतिक पहचान पर भी पड़ा। सांस्कृतिक विरासत का यह ह्रास केवल धार्मिक और सामाजिक गतिविधियों तक सीमित नहीं था। आदिवासी कला, शिल्प, और परंपरागत ज्ञान, जो जंगलों से गहराई से जुड़े थे, भी प्रभावित हुए। उनकी पारंपरिक जड़ी-बूटी चिकित्सा पद्धतियाँ, जिनका ज्ञान पीढ़ियों से चला आ रहा था, वन उपज तक पहुँच न होने के कारण धीरे-धीरे विलुप्त होने लगीं।

5.3 राजनीतिक और कानूनी अधिकारों का संघर्ष

औपनिवेशिक वन नीतियों के दीर्घकालिक प्रभावों में से एक महत्वपूर्ण पक्ष आदिवासियों का वन अधिकारों के लिए संघर्ष रहा है। ब्रिटिश काल में प्रारंभ हुए इस संघर्ष ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जारी रखा। भारत की स्वतंत्रता के बाद, आदिवासियों ने अपने वन अधिकारों की पुनर्बहाली के लिए विभिन्न आंदोलनों और संघर्षों का सहारा लिया। इसके परिणामस्वरूप 2006 में *अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम* पारित किया गया, जिसने आदिवासी समुदायों के वन अधिकारों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। हालांकि, इस कानून के क्रियान्वयन में अब भी कई चुनौतियाँ और बाधाएँ हैं, जिससे आदिवासियों को पूरी तरह से उनके अधिकार नहीं मिल पाए हैं।

5.4 पर्यावरणीय क्षति और वन संरक्षण का संकट

औपनिवेशिक काल में वनों के व्यावसायिक दोहन के कारण जंगलों का अंधाधुंध कटान किया गया। इसके परिणामस्वरूप वनों का क्षरण हुआ और वनस्पति और वन्य जीवों का संतुलन बिगड़ गया। आदिवासी समुदायों को जंगल से बेदखल करने के बाद पर्यावरणीय क्षति और बढ़ी, क्योंकि जंगलों के संरक्षण में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। वन संरक्षण की पारंपरिक विधियाँ, जिनका पालन आदिवासी समुदाय करते थे, उनकी बेदखली के बाद समाप्त हो गईं। यह पर्यावरणीय असंतुलन का कारण बना, जो आज भी एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर रहा है। ब्रिटिश औपनिवेशिक वन नीतियों का झारखंड के आदिवासी समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव न केवल आर्थिक रूप से, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी अत्यधिक विनाशकारी रहा। इन नीतियों ने आदिवासी समुदायों की पारंपरिक आजीविका को बाधित किया, उनकी सांस्कृतिक धरोहर को नुकसान पहुँचाया, और उन्हें उनके प्राकृतिक संसाधनों से वंचित कर दिया। हालांकि, आदिवासी समुदायों ने अपने अधिकारों की पुनर्बहाली के लिए संघर्ष किया और अब भी कर रहे हैं, परंतु उनके सामने चुनौतियाँ कम नहीं हुई हैं। आदिवासी समाज की पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों और वन संरक्षण के प्रति उनके योगदान को आज भी पुनः मान्यता देने और संरक्षित करने की आवश्यकता है, ताकि उनका अस्तित्व और सांस्कृतिक पहचान बनाए रखी जा सके।

IJAMSR

International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research (IJAMSR) ISSN:2581-4281

संदर्भ

1. कैन, पीटर जे., और एंथनी जी. हॉपकिंस। "जेंटलमैनली कैपिटलिज्म और विदेशों में ब्रिटिश विस्तार: I. पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था, 1688-1850।" आधुनिक साम्राज्यों का उदय और पतन, खंड III। रूटलेज, 2017. 23-48।
2. सतपथी, बिजयश्री। "आदिवासी अपने विकास में कहां हैं? भारतीय वन कानूनों की एक सदी।" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रूरल मैनेजमेंट 11.1 (2015): 60-74।
3. प्रकाश, राम। "भारत में औपनिवेशिक वन नीति का वन प्रबंधन और विकास (1860-1930)।" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज 4.4 (2015): 91-99।
4. पटनायक, संजय। "पेसा, वन अधिकार अधिनियम और भारत में आदिवासी अधिकार।" गरीबी निवारण और वनों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन। बैंकॉक। 2007।
5. पारिख, माधुरी। "भारत में वन संरक्षण और भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका: एक महत्वपूर्ण विश्लेषण।" आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस (आईओएसआरजेएचएसएस) 13.4 (2013): 58.
6. टोरेस-रोजो, जुआन मैनुअल, राफेल मोरेनो-सांचेज़, और मार्टिन अल्फोंसो मेंडोज़ा-ब्रिसेनो। "मेक्सिको में सतत वन प्रबंधन।" वर्तमान वानिकी रिपोर्ट 2 (2016): 93-105।
7. मलिक, सृष्टि, और रवि शरण दीक्षित। "औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक काल में पर्यावरण प्रतिरोध के बीज का पता लगाना। 1860 के दशक से 1970 के दशक तक।" पर्यावरण नैतिकता 71.6 (2020) ।
8. मापेड्ज़ा, एवरिस्टो। "औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक ज़िम्बाब्वे में वानिकी नीति: निरंतरता और परिवर्तन।" जर्नल ऑफ़ हिस्टोरिकल ज्योग्राफी 33.4 (2007): 833-851।
9. बोस, पूरबी, बास आर्ट्स, और हान वैन डिजक। "'वन शासन': भारत में वन-निर्भर 'अनुसूचित जनजातियों' के विषय-निर्माण की वंशावली।" भूमि उपयोग नीति 29.3 (2012): 664-673।
10. कुमार, वीएम रवि। "औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक दक्षिण भारत में सामुदायिक वन प्रबंधन: नीति और व्यवहार।" साउथ एशिया रिसर्च 32.3 (2012): 257-277.
11. ग्रोव, रिचर्ड एच. "औपनिवेशिक संरक्षण, पारिस्थितिक आधिपत्य और लोकप्रिय प्रतिरोध: एक वैश्विक संश्लेषण की ओर।" साम्राज्यवाद और प्राकृतिक दुनिया। मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017. 15-50.